इस्लाम में संगीत को न तो अच्छा माना जाता और न ही बुरा। इसलिए अनुदारवादी तत्व एवं उलेमा संगीत को प्राय: नीची निगाहों से देखते थे। बावजूद इसके तुर्की शासकों के अधीन संगीत फलता-फूलता रहा था।

■ सल्तनत के अधीन संगीत का विकास

अलाउद्दीन खिलजी के दरबार में गोपाल नायक जैसे गायक को संरक्षण मिला। वह देवगिरि से आया था। उसके दरबार में अमीर खुसरो भी महत्वपूर्ण संगीतकार एवं गायक था। वह भारतीय संगीत का बड़ा ही प्रशंसक था। वह कहता है कि भारतीय संगीत मानव क्या पशु को भी मदहोश कर देता है। उसने भारतीय एवं ईरानी धुनों को मिलाकर संगीत का विकास किया था। उसे हिन्दुस्तानी शैली का जन्मदाता माना जाता है।

मुहम्मद-बिन-तुगलक ने भी संगीत को संरक्षण दिया था। यद्यपि उसका उत्तराधिकारी फिरोजशाह तुगलक एक रुढ़िवादी मुसलमान था, परन्तु उसने संगीत पर अनेक संस्कृत ग्रंथों का फारसी में अनुवाद कराया।

प्रान्तीय शासकों के अधीन भी संगीत फलता-फूलता रहा था। गुजरात में संगीत पर एक पुस्तक 'गुन्यात-उल-मुन्या' की रचना हुई। जौनपुर के शासक इब्राहिम शाह शर्की ने संगीत को संरक्षण दिया। उसके काल में संगीत पर 'संगीत-शिरोमणि' नामक ग्रन्थ की रचना हुई। उसका उत्तराधिकारी हुसैन शाह शर्की स्वयं भी संगीत का एक प्रमुख विद्वान था। उसने संगीत की एक नयी शैली, ख्याल, का विकास किया। उसी प्रकार, ग्वालियर शासक मान सिंह तोमर स्वयं ही एक महान विशेषज्ञ था। उसने 'मान कौतुहल' नामक ग्रन्थ की रचना की।

संगीत के विकास में भक्ति एवं सूफी संतों की भी अहम भूमिका रही थी। भक्ति संतों में नानक, स्वामी हरिदास (तानसेन के गुरू), चैतन्य तथा मीरा बाई का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। उसी प्रकार, संगीत की शैली, गज़ल एवं कव्वाली का विकास सूफी खानकाहों में ही हुआ था।

■ मुगलों के अधीन संगीत का विकास

• **बाबर और हुमायूँ**- बाबर हमेशा सैन्य अभियान में व्यस्त रहा। इसलिए संगीत पर समय देने का उसके पास बहुत कम वक्त होता था। किन्तु संगीत में उसकी व्यक्तिगत रूचि थी, इसलिए जब भी सैन्य अभियान के मध्य उसे अवकाश मिलता, तो वह संगीत का आनंद लेता था। हुमायूँ भी संगीत में रूचि रखता था। बताया जाता है कि उसके दरबार में 29 गायक थे तथा वह प्रत्येक सप्ताह सोमवार एवं बुधवार को संगीत की गोष्ठी का आयोजन करता था। वह स्वयं संगीत सुनता और महत्वपूर्ण व्यक्तियों को भी बुलाकर उन्हें संगीत सुनवाता था।

• **अकबर**- अकबर, कला का महान संरक्षक था। चाहे स्थापत्य हो या चित्रकला अथवा संगीत, सभी को उसने बड़े उत्साह से संरक्षण दिया। मुगल संस्कृति के विकास में अकबर के काल में एक मानक स्थापित हुआ। अबुल फज़ल लिखता है कि अकबर के काल में 36 गायक थे। इनमें तीन प्रमुख थे-तानसेन, बैजू बावरा और मालवा का भूतपूर्व शासक बाज बहादुर। तानसेन सर्वश्रेष्ठ गायक था। पिछले 1000 वर्षों में तानसेन जैसा कोई गायक नहीं हुआ। तानसेन ने ग्वालियर के सूफी संत मुहम्मद गौस से संगीत की शिक्षा पायी थी। फिर उसने एक भक्ति संत स्वामी हरिदास से भी संगीत की शिक्षा ली थी और ध्रुपद गायन की शैली सीखी थी।

तानसेन को कुछ नए रागों को जन्म देने का भी श्रेय दिया जाता है; यथा-मियाँ की मल्हार (राग मल्हार), मियाँ की तोड़ी तथा राग दरबारी।

• **जहाँगीर**- वैसे तो जहाँगीर की मुख्य रूचि चित्रकला में थी, परंतु उसने संगीत को भी संरक्षण दिया। उसके दरबार में छतर खाँ, खुर्रम दाद और तानसेन के पुत्र बिलास खाँ प्रमुख गायक के रूप में स्थापित थे।

• **शाहजहाँ**- शाहजहाँ के काल में भी मुगल दरबार में संगीत गूँजता रहा। बताया जाता है कि बिलास खाँ के दमाद लाल खाँ को भी शाहजहाँ के दरबार में संरक्षण मिला था। फिर शाहजहाँ को गायकी में भी विशेष रूचि थी।

• **औरंगजेब**- जैसाकि हम जानते हैं कि औरंगजेब ने संगीत को गैर-इस्लामी करार देते हुए पाबंदी लगा दी थी, परंतु उसी काल में संगीत पर सबसे अधिक ग्रंथ लिखे गए। इस काल में 'फरिक उल्लाह' नामक विद्वान ने राग दर्पण नामक ग्रंथ का फारसी में अनुवाद किया था। फिर इस काल में मुगल हरम में संगीत को संरक्षण प्राप्त रहा।

आगे के एक मुगल शासक **मुहम्मद शाह रंगीला** ने संगीत को विशेष संरक्षण प्रदान किया। उसके दरबार में सदारंग तथा अदारंग जैसे दो प्रमुख गायक निवास करते थे। इसके काल में ध्रुपद की जगह संगीत की ख्याल शैली का महत्व बढ़ गया।

■ भारतीय संगीत की शैलियाँ:

भारतीय संगीत की दो प्रमुख शैलियाँ हैं- हिन्दुस्तानी शैली तथा कर्नाटक शैली। कर्नाटक शब्दकार विद्यारण्य ने 15वीं शताब्दी में सर्वप्रथम प्रयोग किया था, जो विजयनगर साम्राज्य का तत्कालीन प्रधानमंत्री था। इन दोनों शैलियों में काफी समानता होते हुए भी कई भिन्नताएं भी हैं। ऐसा विश्वास किया

जाता है कि कर्नाटक शैली से पृथक होकर हिन्दुस्तानी शैली का विकास अमीर खुसरो के संगीत संबंधी प्रभाव से हुआ। परंतु वास्तविकता यही है कि इन दोनों शैलियों का पृथकत्व किसी संगीतकार के प्रभाव से नहीं, बल्कि क्षेत्रीय प्रभाव से हुआ। उत्तर भारत में हिन्दुस्तानी शैली का और दक्षिण भारत में द्रविड़ भाषायी क्षेत्र में कर्नाटक शैली का विकास हुआ। हिन्दुस्तानी तथा कर्नाटक दोनों शैलियों में प्रयुक्त रागों के नाम तो समान हैं, परन्तु दोनों के स्वर, ताल तथा लय भिन्न-भिन्न हैं।

प्रश्नः 'अमीर खुसरो इंडो-इस्लामिक संस्कृति का जीवंत रूप था।' इस कथन पर टिप्पणी कीजिए।

उत्तर : हिंदू एवं इस्लाम के बीच वैचारिक टकराहट ने बरनी जैसे रूढ़िवादी इस्लामी चिंतकों को जन्म दिया, तो हिंदुत्व एवं इस्लाम के रचनात्मक मेल ने अमीर खुसरो जैसे उदारवादी चिंतक को उत्पन्न किया।

एक तरह से अगर देखा जाए, तो अमीर खुसरो ने मुस्लिम अमीर वर्ग के देशीकरण की प्रक्रिया को प्रोत्साहन दिया। अब तक तुर्की अमीर वर्ग अपनी विरासत गजनी एवं गोर देश की ओर देखते थे, परंतु अमीर खुसरो ने दिल्ली को अपनी जन्मभूमि की तरह अपना लिया। उसने दिल्ली की प्रशंसा में अनेक गीत लिखे और दिल्ली को 'हजरत-ए-दिल्ली' कहा। उसके विचार में यह शरणार्थियों का पनाहगार था। एक लेखक के रूप में उसकी अचूक दृष्टि का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि आगे फिर दिल्ली की पहचान शरणार्थियों की शरण स्थली के रूप में हुई, जब भारत का विभाजन हुआ।

एक लेखक के रूप में अमीर खुसरो भारत की समन्वित संस्कृति का जीवंत रूप दिखता है। एक तरफ उसने फारसी भाषा-साहित्य का संवर्द्धन किया, तो दूसरी तरफ भारतीय भाषाओं का भी। एक फारसी विद्वान एवं लेखक के रूप में उसने प्रत्येक महत्वपूर्ण सुल्तान के काल पर एक रचना लिखी, वहीं दूसरी तरफ वह खड़ी बोली हिंदी अथवा हिंदवी का जन्मदाता बना। आगे चलकर हिंदवी की दो शैलियां विकसित हुईं- हिंदी एवं उर्दू। उर्दू को जुबान-ए-दिल्ली और अमीर खुसरो को 'तूती-ए-हिंद' के नाम से जाना गया।

अमीर खुसरो की उपलब्धि साहित्यिक क्षेत्र तक ही सीमित नहीं रही। अमीर खुसरो के बिना भारतीय संगीत का विकास अधूरा रह जाता। उसे हिंदुस्तानी संगीत का जन्मदाता माना जा सकता है। उसने भारतीय धुनों को समझा और उन्हें ईरानी धुनों के साथ मिलाकर हिंदुस्तानी शैली की आधारशिला रख दी। इतना ही नहीं, उसने ध्रुपद गायकी का विकास किया। यह ध्रुपद गायकी हिंदुस्तानी संगीत का स्तंभ बन गयी, जिसे आगे तानसेन ने समृद्ध किया।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि अमीर खुसरो स्वयं समन्वित संस्कृति की उपज था, परंतु साथ ही उसने हिंदुस्तान की समन्वित संस्कृति को प्रोत्साहन दिया। अमीर खुसरो ने हिंदुस्तानी संस्कृति पर अत्यधिक बल दिया। आगे खुसरो की परंपरा से मीर तकी मीर तथा मिर्ज़ा गालिब से लेकर आधुनिक लेखक सादत हसन मंटो तक जुड़ते चले गए।

प्रश्नः साहित्य एवं कला के क्षेत्र में कृष्णदेव राय के योगदान पर प्रकाश डालिए।

उत्तर : कृष्णदेव राय भारत के उन महान शासकों में शामिल हैं, जिन्होनें न केवल प्रशासन को सुदृढ़ आधार दिया, वरन् साहित्य एवं कला के क्षेत्र में भी अनुपम योगदान दिया। अपनी रचनात्मक प्रतिभा में कृष्णदेव राय अकबर के निकट आ जाते हैं। वस्तुतः दक्षिण के राज्यों के साथ निरंतर संघर्ष में उलझे रहने के बावजूद भी कृष्णदेव राय ने अपनी रचनात्मक प्रतिभा को फलने-फूलने का अवसर दिया। उनके काल में विजयनगर दरबार विद्वानों एवं कलाकारों का बड़ा संरक्षक बना।

विजयनगर शासक संस्कृत के बड़े संरक्षक रहे थे। कृष्णदेव राय से पूर्व ही विजयनगर दरबार में चारों वेदों पर टीकाएं लिखवाई गयी थीं। कृष्णदेव राय के अंतर्गत यह परंपरा जारी रही। कृष्णदेव राय तेलुगु के साथ-साथ संस्कृत के भी बड़े विद्वान थे। तेलुगु में उन्होंने 'आमुक्तमाल्यद' नामक रचना लिखी। यह राजनीति एवं प्रशासन पर एक ग्रंथ है। उसी ग्रंथ से हमें यह सूचना मिलती है कि कृष्णदेव राय ने संस्कृत में भी 5 कृतियां लिखी थीं। फिर कृष्णदेव राय के दरबार में एक विद्वान तेनालीराम रहता था, उसने 'पाण्डुरंग महात्म्य' नामक कृति लिखी।

कृष्णदेव राय ने संस्कृत के साथ-साथ तेलुगु, तमिल तथा कन्नड़ भाषा-साहित्य को भी संरक्षण दिया, परंतु उनके काल में सबसे अधिक प्रगति तेलुगु भाषा-साहित्य को मिली। उनका काल तेलुगु भाषा-साहित्य के पुनर्जागरण का काल माना जाता है। उनके दरबार में तेलुगु के 8 विद्वान (अष्टदिग्गज) रहते थे। इनमें प्रमुख विद्वान पेद्दन था। पेद्दन ने एक प्रमुख कृति स्वारोचित संभव लिखी। एक दूसरा विद्वान नंदितिम्मन था, उसने 'परिजातापहरण' नामक ग्रंथ की रचना की।

उनके काल में साहित्य के साथ-साथ कला का भी व्यापक विकास देखने को मिलता है। कृष्णदेव राय के अंतर्गत स्थापत्य की द्रविड़ शैली को और भी परिपक्वता मिली। उनके द्वारा निर्मित हजारा राम मंदिर और विट्ठल स्वामी मंदिर उत्कृष्ट स्थापत्य के उदाहरण हैं। इस काल में द्रविड़ शैली के अंतर्गत कुछ अन्य विशेषताओं का भी विकास देखा गया। वैसे तो गोपुरम का निर्माण पहले ही आरंभ हो गया था, परंतु इस काल में कुछ बेहतर किस्म के गोपुरम् बने। इसके अतिरिक्त स्तंभों को अत्यधिक अलंकृत बनाए जाने लगा। एक ही पत्थर से स्तंभ एवं

पशु आकृति दोनों साथ-साथ होना अलौकिक जानवर के मूर्ति स्थापत्य को विशिष्ट बना देता है। साथ ही मंडप के अतिरिक्त कल्याण मंडप का निर्माण होने लगा। इसमें देवी और देवता का विवाह कराया जाता था।

विजयनगर के अंतर्गत चित्रकला की एक पृथक शैली विकसित हुई, जिसे 'लिपाक्षी चित्रकला' के नाम से जाना जाता है। इसमें विषय-वस्तु रामायण एवं महाभारत से ली जाती थी। उसी प्रकार नृत्य एवं संगीत को मिलाकर एक पृथक शैली का विकास हुआ, जिसे 'यक्षिणी शैली' का नाम दिया जाता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि राजनीतिक क्षेत्र में विजयनगर साम्राज्य का गौरव महज 200 वर्षों तक रहा, परंतु उसकी सांस्कृतिक उपलब्धि भारतीय संस्कृति की धरोहर बन गई है।

प्रश्नः कश्मीर : जैन-उल-आबिदीन (संक्षिप्त लेख)।

भारतीय इतिहास में कुछ ऐसे शासक हुए जिनकी नीतियां समकालीन युग से ऊपर उठकर सभी युगों एवं सभी क्षेत्रों के लिए महत्वपूर्ण हो जाती हैं, वैसा ही एक शासक था-15वीं सदी के कश्मीर का शासक जैन-उल-आबिदीन।

जैन-उल-आबिदीन 15वीं सदी में अपने भाई सिकंदरशाह के उत्तराधिकारी के रूप में गद्दी पर बैठा था। उसे एक बड़ी कड़वी विरासत प्राप्त हुई थी, वह थी सांप्रदायिक तनाव। सिकंदरशाह की कूटनीति के कारण मंदिर ध्वस्त किए जा चुके थे तथा कश्मीरी पंडितों को देश से निकाल दिया गया था। जैन-उल-आबिदीन ने उस विध्वंस के बीच पुनर्निर्माण की प्रक्रिया आरंभ कर दी। उसने हिंदू मंदिरों को पुनर्स्थापित किया तथा कश्मीरी पंडितों को दुबारा घाटी में बसाया। हिंदुओं की धार्मिक भावनाओं का सम्मान करते हुए उन पर से जजिया कर हटा लिया। इतना ही नहीं, उसने गौहत्या पर भी पाबंदी लगा दी।

उसने कला एवं साहित्य के विकास के मार्ग में धर्म को आड़े नहीं आने दिया। वह स्वयं फारसी के अतिरिक्त संस्कृत, कश्मीरी और तिब्बती भाषा का जानकार था। उसने कश्मीर की समन्वित संस्कृति को संरक्षण दिया। उसने कश्मीर की एक प्रमुख कृति राजतरंगिणी का अगला भाग संस्कृत के एक विद्वान 'जोनराज' से लिखवाया। उसी प्रकार उसने राजकीय सेवा में हिंदुओं की नियुक्ति को प्रोत्साहन दिया। फिर इस्लाम के द्वारा स्वीकृत न होने के बावजूद भी उसने संगीत को संरक्षण दिया।

उनकी इन्हीं महान कृतियों के कारण उसे 'कश्मीर का अकबर' कहा गया है। दिलचस्प तथ्य यह है कि जैन-उल आबिदीन ने हिंदुस्तान के दूरवर्ती क्षेत्र में हिंदू-मुस्लिम सद्भावना की ऐसी दुर्लभ मिशाल रखी, जो अन्यत्र दुर्लभ था। यह वह काल था जब पश्चिम एशिया और मध्य एशिया में ही नहीं, बल्कि अपने को सभ्य कहने वाले यूरोप में भी धर्म के नाम पर रक्त बहाया जा रहा था। अंत में हम ऐसा कह सकते हैं कि जैन-उल-आबिदीन वर्तमान एवं भविष्य के लिए उतना ही प्रासंगिक है जितना अतीत के लिए था। दुःखद आश्चर्य का विषय यह है कि हमने कश्मीर में सांप्रदायिक तनाव विरासत के रूप में प्राप्त कर लिया है, परंतु उसके समाधान के रूप में जैन-उल-आबिदीन की विरासत नहीं प्राप्त कर सके। इसलिए वर्तमान में कश्मीर में धार्मिक रूढ़िवाद, उन्माद, संघर्ष रक्तपात सभी मौजूद हैं, परंतु उसका वास्तविक समाधान जैन-उल-आबिदीन अनुपस्थित है।

प्रश्नः बीजापुर के सुल्तान इब्राहिम आदिलशाह द्वितीय (1580-1627 ई.) की सांस्कृतिक उपलब्धियों का वर्णन कीजिये।

उत्तरः इब्राहिम आदिलशाह द्वितीय, मध्यकालीन भारत के इतिहास में एक विलक्षण शासक ठहरता है। उसने कला एवं संस्कृति के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया तथा धार्मिक सद्भाव की नीति की एक मिसाल कायम कर दी।

- उसने अद्भुत नक्काशी से युक्त कुछ महत्त्वपूर्ण स्थापत्यों का निर्माण करवाया, यथा- आनंदमहल, मिहत्तर महल तथा इब्राहिम रोजा के नाम से स्थापत्यों का समूह।
- वह संगीत का एक महान पारखी था तथा उसने संगीत में अद्भुत विशेषज्ञता हासिल की थी। उसने संगीत पर एक दुर्लभ ग्रंथ 'किताब-ए-नौरस' की रचना की।
- उसने धार्मिक सद्भाव की नीति को प्रोत्साहन दिया। वह स्वयं विद्या एवं ज्ञान की देवी सरस्वती का उपासक था, जबकि इस्लाम में मूर्तिपूजा वर्जित है। उसने प्रशासन में बड़ी संख्या में मराठी हिंदुओं की नियुक्ति की।
- इब्राहिम द्वितीय का दरबार न केवल समन्वित भारतीय संस्कृति, बल्कि वैश्विक संस्कृति को भी अभिव्यक्त करता था। उसके दरबार में बड़ी संख्या में मुस्लिम विश्व से साहित्यकार, कलाकार एवं विद्वान आते रहे तथा उन्हें संरक्षण मिला। इसलिये कुछ विद्वानों का यह मानना है कि वर्तमान में वैश्विक संस्कृति को प्रोत्साहन देने में जो भूमिका यूनेस्को निभा रहा है, वही भूमिका मध्यकाल में इब्राहिम आदिलशाह द्वितीय का दरबार निभा रहा था।

प्रश्नः दाराशिकोह (संक्षिप्त लेख)

पिछले लगभग 600 वर्षों तक साथ-साथ रहते हुए हिंदुस्तान में हिंदू एवं मुस्लिमों ने, जो एक गांगी-जमुनी संस्कृति का विकास किया था, दाराशिकोह उसका जीवंत रूप था। हिंदुस्तान में भक्ति एवं सूफी संतों तथा अकबर जैसे महान

पादशाह ने धार्मिक सद्भाव की आधारशिला रखी थी। दाराशिकोह ने न केवल उस विरासत को स्वीकार किया, बल्कि उसे और भी आगे बढ़ाने का प्रयास किया।

दाराशिकोह सूफी संत मुहम्मद गौस के दर्शन से बहुत प्रभावित था। मुहम्मद गौस के द्वारा 'बहर-उल-हयात' का सिद्धांत दिया गया था। इसका सार था सभी धर्म के मूल-भाव में एकता। दाराशिकोह ने इसको आधार बनाकर मज्म-उल-बहरीन (समुद्रों का मिलन) का सिद्धांत दिया। मध्यकाल में जब लोग धार्मिक उन्माद से ग्रस्त थे, तब दाराशिकोह के द्वारा विभिन्न धार्मिक पंथों के बीच एकता का सूत्र खोजने का प्रयास अपने आप में एक बड़ी उपलब्धि था।

उसने अपने विचारों को केवल मनन एवं चिंतन तक ही सीमित नहीं रखा, बल्कि उसने हिंदू शास्त्रों का अध्ययन कर हिंदू धर्म के मर्म को समझने का प्रयास किया। वह हिंदू विद्वानों के संपर्क में आया और फिर भागवत् गीता एवं योगवशिष्ठ जैसे संस्कृत के ग्रंथों का फारसी में अनुवाद किया गया। साथ ही उसकी देखरेख में 52 उपनिषदों का फारसी में अनुवाद किया गया; इसे 'सिर्र-ए-अकबर' का नाम दिया गया। इस प्रकार अकबर ने हिंदू-मुस्लिम संप्रदाय के बीच समन्वय का जो सूत्र खोजा था, दाराशिकोह ने उस सूत्र को मजबूत बनाने का प्रयास किया। अकबर ने इबादतखाना एवं धार्मिक वाद-विवाद के माध्यम से हिंदू धर्म एवं इस्लाम के बीच की एकता को समझने का प्रयास किया। दाराशिकोह ने उस एकता की बेहतर समझ के लिए शास्त्रों का भी अन्वेषण किया। दाराशिकोह की बेहतर शैक्षणिक पृष्ठभूमि के कारण यह काम उसके लिए आसान था।

अपनी उदार धार्मिक विरासत के कारण दाराशिकोह को 'लघु-अकबर' कहा गया है। ऐसा अनुमान किया जा सकता है कि यदि दाराशिकोह को हिंदुस्तान के पादशाह का पद प्राप्त होता, तो हिंदुस्तान की समन्वित संस्कृति की परंपरा को एक बेहतर दिशा मिलती, परंतु औरंगजेब के सिंहासनारोहण ने मुगल दरबार की नीति में नाटकीय परिवर्तन ला दिया।

प्रश्नः भारत में 16वीं सदी के काल को किस आधार पर भारतीय पुनर्जागरण की संज्ञा दी जा सकती है?

उत्तर : पुनर्जागरण से तात्पर्य है पुनर्उत्थान। यह पुनर्उत्थान किसी भी क्षेत्र में देखा जा सकता है- राजनीतिक, सामाजिक अथवा सांस्कृतिक। भारत के 16वीं सदी के काल को इस आधार पर पुनर्जागरण के काल की संज्ञा दी जा सकती है कि इस काल में धार्मिक सद्भाव और सांस्कृतिक समन्वय की नीति को विशेष प्रोत्साहन मिला।

16वीं सदी में भारत में धार्मिक सद्भाव और समन्वित संस्कृति को प्रोत्साहन देने में भक्ति एवं सूफी आंदोलन और अकबर जैसे पादशाह ने अहम भूमिका निभाई। 15वीं सदी में कबीर एवं नानक जैसे संतों ने ईश्वरीय एकता की बात करके मानव की एकता की ओर संकेत कर दिया। इसे जायसी जैसे सूफी संतों ने आगे बढ़ाया और प्रोत्साहन दिया। उन्होंने हिंदुओं के घरों की कहानी हिंदुओं की भाषा में कही। फिर पादशाह अकबर ने सुलह-ए-कुल की नीति पर बल देकर एक नई मिसाल कायम की और उस काल में धार्मिक सद्भाव की नीति पर बल दिया, जब न केवल पश्चिमी एशिया, मध्य एशिया तथा अपने को सभ्य कहने वाले यूरोप में भी धर्म के नाम पर रक्त बहाया जा रहा था।

पुनर्जागरण का यह तत्व सांस्कृतिक क्षेत्र में भी देखा जा सकता था। हिंदुत्व एवं इस्लाम की गांगी-जमुनी संस्कृति कला एवं साहित्य में भी व्यक्त हुई। अकबर के अधीन स्थापत्य की मेहराबी एवं शहतीरी शैली में समन्वय हुआ तथा व्यापक निर्माण कार्य किया गया। यही समन्वय चित्रकला एवं संगीत कला के क्षेत्र में भी देखा जा सकता था। चित्रकला के क्षेत्र में दशवंत एवं मीर सैयद अली जैसे चित्रकार तथा संगीत के क्षेत्र में तानसेन एवं बैजू बावरा जैसे महान गायक 16वीं सदी की उपलब्धि है। इस काल में कथक नृत्य एवं ध्रुपद गायकी को व्यापक संरक्षण मिला।

फिर वह यह काल था जब देशी भाषा-साहित्य के रूप में हिंदी, बंगाली, मराठी, उड़िया, गुजराती, राजस्थानी एवं पंजाबी सभी को प्रोत्साहन मिला। इसमें भक्ति आंदोलन का महत्वपूर्ण योगदान रहा।

हालांकि, यह सही है कि 16वीं सदी का भारतीय पुनर्जागरण, यूरोपीय पुनर्जागरण से पृथक रहा। यूरोपीय पुनर्जागरण की तरह इसमें तर्कवाद का तत्व उतना प्रबल नहीं था, परंतु यह अपने स्वरूप में विशिष्ट एवं मौलिक था क्योंकि यूरोप में होने वाले धार्मिक तनाव की जगह यह धार्मिक समन्वय पर बल देता था। इसलिए 16वीं सदी के भारत को पूर्व आधुनिक काल के साथ भी जोड़ा जा सकता है।

■■■